गुप्त साम्राज्य का पतन

निरन्तर उत्थान के पश्चात् शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य इस वंश के अन्तिम महान् शासक स्कन्दगुप्त की 467 ईस्वी में मृत्यु के पश्चात् पतन की दिशा में तेजी से बढ़ने लगा।

यद्यपि स्कन्दगुप्त के उत्तराधिकारियों ने किसी न किसी रूप में 550 ईस्वी तक मगध पर अधिकार रख सकने में सफलता प्राप्त की, परन्तु इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के पृष्ठों में स्वर्ण युग का दावेदार गुप्त साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया। गुप्त साम्राज्य का पतन किसी कारण विशेष का परिणाम नहीं था, बल्कि विभिन्न कारणों ने इस दिशा में योगदान दिया। जो इस प्रकार -

(i) अयोग्य तथा निर्बल उत्तराधिकारी
(ii) शासन-व्यवस्था का संघात्मक स्वरूप
(iii) उच्च पदों का आनुवंशिक होना
(iv) प्रान्तीय शासकों के विशेषाधिकार
(v) वाह्य आक्रमण
(vi) बौद्ध धर्म का प्रभाव

गुप्त साम्राज्य के पतन का तात्कालिक कारण यह था कि स्कन्दगुप्त के बाद शासन करने वाले राजाओं में योग्यता एवं कुशलता का अभाव था। गुप्त वंश के प्रारम्भिक नरेश अत्यन्त योग्य एवं शक्तिशाली थे। समुद्रगुप्त एवं उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने की आकांक्षा रखते थे। कुमारगुप्त प्रथम भी इतना योग्य था कि उसने विशाल साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखा।

स्कन्दगुप्त एक वीर एवं पराक्रमी योद्धा था जिसने पुष्यमित्र एवं हूण जैसे शत्रुओं को परास्त किया। परन्तु उसके बाद के गुप्त राजाओं में वीरता एवं कार्य-कुशलता नहीं थी। गुप्त राजकुमारों में आपसी वैमनस्य एवं विद्वेष-भाव था।

कुछ राजकुमारों ने विभिन्न भागों में अपनी स्वतन्त्र सत्ता भी कायम कर ली। तत्कालीन विक्षुब्ध राजनैतिक वातावरण सम्राट की वीरता, पराक्रम एवं कार्य-कुशलता की अपेक्षा करता था। परन्तु गुप्त शासकों में इन गुणों का अभाव था।

अत: साम्राज्य का विघटन अवश्यंभावी था। गुप्त प्रशासन का स्वरूप संघात्मक था। साम्राज्य में अनेक सामन्ती इकाइयाँ थीं। गुप्तकाल के सामन्तों में मौखरि, उत्तरगुप्त, परिव्राजक, सनकानीक, वर्मन्, मैत्रक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन वंशों के शासक 'महाराज' की उपाधि ग्रहण करते थे। स्थानीय राजाओं तथा गणराज्यों को स्वतन्त्रता दी गयी थी। गुप्त शासक अनेक 'छोटे राजाओं का राजा' होता था। सामन्त एवं प्रान्तीय शासक अपने-अपने क्षेत्रों में पर्याप्त स्वतन्त्रता का अनुभव करते थे।

प्रशासन की यह सामन्ती व्यवस्था कालान्तर में साम्राज्य की स्थिरता के लिये अभिशाप सिद्ध हुई। जब तक केन्द्रीय शासक शक्तिशाली रहे तब तक वे दबे रहे। परन्तु केन्द्रीय शक्ति के निर्बल होने पर अधीन राजाओं ने स्वतन्त्रता घोषित कर दी जिसके फलस्वरूप गुप्त-साम्राज्य का पतन हुआ।

गुप्त प्रशासन में सभी ऊंचे-ऊंचे पद वंशानुगत होते थे। हरिषेण, जो एक महादण्डनायक था, का पिता ध्रुवभूति भी इसी पद पर कार्य कर चुका था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के सचिव वीरसेन के उदयगिरि गुहालेख से पता चलता है कि वह आनुवंशिक रूप से अपने पद का उपभोग कर रहा था।

करमदण्डा लेख से पता चलता है कि कुमारगुप्त का एक मंत्री पृथिवीषेण भी अपने पिता के बाद इस पद पर नियुक्त हुआ था। पुण्ड्रवर्धन भुक्ति में दत्त परिवार आनुवंशिक रूप से शासन कर रहा था। ऐसी व्यवस्था के फलस्वरूप कभी-कभी अयोग्य व्यक्ति भी इन पदों पर नियुक्त हो जाते थे जिससे शासन-तन्त्र में शिथिलता आ जाती थी। ऐसे पदाधिकारियों की सफलता पूर्णतया सम्राट पर निर्भर

करती थी। ऐसे समय में जब गुप्त प्रशासन निर्बल व्यक्तियों के हाथ में था तब ये पदाधिकारी अवश्य ही राज्य की एकता और स्थायित्व के लिये घातक सिद्ध हुए होंगे। गुप्त युग में प्रान्तीय शासकों एवं सामन्तों को अनेक विशेषाधिकार प्राप्त थे। अपने-अपने प्रदेशों में वे सम्राट के समान ही सुख-सुविधाओं का उपभोग करते थे। वे 'महाराज' की उपाधि धारण करते थे। सामन्तों को सेना रखने का अधिकार था। वे अपने अधिकार-क्षेत्र की जनता से कर वसूल करते थे।

अग्रहार दान की प्रथा भी प्रचलित थी। इसके अनुसार सम्राट ब्राह्मणों को भूमि दान में देता था। इस प्रकार की भूमि से सम्बन्धित समस्त अधिकार भी दानग्राही व्यक्ति को मिल जाते थे। ऐसी भूमि में स्थित समस्त चारागाहों, खानों, निधियों, विष्टि (बेगार) आदि के ऊपर भी उनका अधिकार हो जाता था।

आर्थिक तथा राजनैतिक दोनों ही दृष्टि से यह व्यवस्था साम्राज्य के लिये घातक सिद्ध हुई। इससे एक ओर जहाँ राज्य की आय कम हुई वहीं दूसरी ओर दानग्राही व्यक्ति, छोटे-छोटे राजा बन बैठे। प्रान्तीय पदाधिकारियों की नियुक्ति स्वयं राज्यपाल ही किया करता था तथा इस विषय में वह सम्राट से परामर्श नहीं करता था।

जूनागढ़ अभिलेख से पता चलता है कि उस प्रान्त के राज्यपाल पर्णदत्त ने अपने पुत्र चक्रपालित को गिरनार नगर का नगरपाल नियुक्त किया था। इस व्यवस्था में कर्मचारियों की राजभक्ति प्रान्त के राज्यपाल के प्रति होती थी, न कि सम्राट के प्रति। प्रान्तों में जूनागढ़ को विशेष स्थान प्राप्त था। वहाँ के राज्यपाल न तो अपने अभिलेखों में गुप्त संवत् का प्रयोग करते थे और न नियमित रूप से सम्राट का उल्लेख करते थे।

वहाँ विद्रोह की आशंका सदैव बनी हुई थी। यही कारण था कि प्रान्तों में सर्वप्रथम जूनागढ़ ही स्वतन्त्र हुआ। इसमें कोई आश्चर्य नहीं यदि गुप्त राज्यपालों ने प्रान्तों में अपना प्रभाव बढ़ाकर स्वतन्त्र होने की चेष्टा की हो।

गुप्त साम्राज्य के पतन में वाह्य आक्रमणों का विशेष हाथ रहा है। ऐसे आक्रमणों में हूणों का आक्रमण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गुप्त शासकों का हूण संकट

की ओर दृष्टिकोण बहुत बुद्धिमतापूर्ण नहीं रहा। स्कन्दगुप्त ने यद्यपि हूणों को परास्त किया था तथापि सिन्धु घाटी को जीतकर उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षित करने का प्रयास नहीं किया। उसने केवल हूण संकट को कुछ समय के लिये टाल दिया।

बार-बार हूणों का आक्रमण होने के बावजूद भी गुप्त शासकों ने उन्हें रोकने के लिये कोई ठोस योजना नहीं बनाई। अत: गुप्त साम्राज्य में हूणों की घुसपैठ शुरू हो गयी। एरण अभिलेख से पता चलता है कि हूण नरेश तोरमाण ने 500 ई० के बाद इस प्रदेश को जीतकर अधिकार में कर लिया था।

और वहाँ धन्यविष्णु, जो गुप्तों के एरण के राज्यपाल मातृविष्णु का भाई था, ने तोरमाण की अधीनता स्वीकार कर ली थी। तोरमाण के पुत्र मिहिरकुल के काल में हूणों की शक्ति और अधिक बढ़ी। उसने नरसिंहगुप्त- बालादित्य पर आक्रमण किया, परन्तु वह पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। नरसिंहगुप्त ने घोर अदूरदर्शिता का परिचय दिया और अपनी माता के कहने में आकर ऐसे भयंकर शत्रु को मुक्त कर दिया।

कुछ विद्वानों के मतानुसार हूणों के आक्रमण से गुप्त साम्राज्य को बहुत बड़ा धक्का लगा। प्रारम्भिक गुप्त नरेश वैष्णव धर्मानुयायी थे। वे चक्रवर्ती सम्राट बनने की आकांक्षा रखते थे। समुद्रगुप्त का आदर्श 'धरणिबन्ध' तथा उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय का आदर्श 'कृत्स्नपृथ्वीजय' था। परन्तु कुमारगुप्त प्रथम के समय से गुप्त परिवार पर बौद्ध धर्म की छाप पड़ने लगी।

इस धर्म का एक परिणाम यह निकला कि अब गुप्त-शासक पृथ्वी-विजय के स्थान पर पुण्य प्राप्ति की चिन्ता में लग गये। उन्होंने अपने राज्य को चैत्यों और विहारों के सजाने में ही अपना गौरव माना। इससे उनकी युद्ध कौशल कम होती गई।

छठीं शताब्दी में हूण आक्रमण तथा आन्तरिक कलह ने गुप्त साम्राज्य की स्थिति को अत्यन्त डावाँडोल बना दिया था। ऐसे समय में शक्तिशाली सेना एवं सुदृढ़

शासन की महती आवश्यकता थी। परन्तु बुधगुप्त और नरसिंहगुप्त जैसे राजा बौद्धधर्म के प्रभाव में डूबे रहे।

हुएनसांग हमें बताता है कि जिस समय हूण नरेश मिहिरकुल ने बालादित्य (नरसिंहगुप्त) के ऊपर आक्रमण किया, उसने बिना युद्ध किये ही अपना राज्य छोड़ दिया किन्तु फिर भी जब उसके सैनिकों ने हूणनरेश को पराजित कर बन्दी बना लिया तब भी नरसिंहगुप्त ने बौद्धधर्म के प्रभाव में आकर मिहिरकुल को छोड़ दिया था।

इस प्रकार बौद्धों की अहिंसा नीति ने साम्राज्य की सैनिक शक्ति कुण्ठित कर दिया जिसका विनाशकारी परिणाम साम्राज्य के पतन के रूप में सामने आया। बौद्ध धर्म के प्रभाव से बौद्ध संस्थाओं एवं विहारों को अत्यधिक धन दान दिये जाने सिराज पोस्ट खाली होने लगा।

इस समय भारतवर्ष में अनेक नयी-नयी शक्तियों का उदय हो रहा था । थानेश्वर में वर्द्धन, कन्नौज में मौखरि, कामरूप में वर्मन् तथा मालवा में औलिकरवंशी यशोधर्मन् का उदय हुआ। इनमें यशोधर्मन् गुप्त साम्राज्य के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। उसने गुप्त साम्राज्य का अधिकांश भाग जीत लिया। इतिहासकार हेमचन्द्र रायचौधरी यशोधर्मन् के पूर्वी भारत के अभियान को गुप्त-साम्राज्य के पतन का तात्कालिक कारण मानते हैं।

इस प्रकार इन सभी कारणों ने मिलकर गुप्त साम्राज्य की जड़ों को हिला दिया था तथा अन्ततोगत्वा उसका पतन हो गया। गुप्त साम्राज्य का पतन प्राचीन भारतीय इतिहास की एक प्रमुख घटना थी। इसके साथ ही भारत का इतिहास विभाजन एवं विकेन्द्रीकरण की दिशा में उन्मुख हुआ।